

आदिवासी विमर्श : अवधारणा और आंदोलन

- प्रस्तावना
- अस्मितामूलक विमर्श और आदिवासी
- आदिवासी साहित्य की अवधारणा
- आदिवासी चिंतकों का नजरिया
- आदिवासी विमर्श की परंपरा
 - 1 पुरखा साहित्य
 - 2 आदिवासी भाषाओं में रचित साहित्य की परंपरा
 - 3 समकालीन हिंदी आदिवासी लेखन
- आदिवासी साहित्य की प्रवृत्तियां
- आदिवासी साहित्य की भाषा और शिल्प
- उपसंहार

प्रस्तावना

हिंदी में पिछले दो-तीन दशकों से अस्मितावादी लेखन चर्चा का विषय बना हुआ है। यही दौर है जिसमें स्त्री, दलित, आदिवासी आदि उत्पीड़ित अस्मिताओं ने साहित्य में बढ़-चढ़कर हिस्सेदारी की व साहित्यिक आंदोलन चलाए। आदिवासी विमर्श और आंदोलन इनमें नवीनतम है। इन आंदोलनों ने साहित्य को नई धारा दी और समाज को नई दिशा प्रदान की। आदिवासी साहित्य आने से पहले बाहरी समाज आदिवासी दुनिया के बारे में बहुत कम जानता था। आदिवासी लेखन ने साहित्य जगत को एक नई विश्वदृष्टि दी, नए आयाम दिये। अब हम आदिवासी विमर्श की अवधारणा और आंदोलन को समझने का प्रयास करेंगे।

अस्मितामूलक विमर्श और आदिवासी

पिछले दशकों में मुक्तिकामी साहित्य ने पाठकों, शोधार्थियों और आलोचकों का ध्यान आकर्षित किया है। इसी प्रक्रिया में आदिवासी साहित्य ने भी अपनी उपस्थिति दर्ज की है। अकादमिक दुनिया में स्त्रीवादी लेखन और दलित लेखन के बाद आने से जहाँ एक तरफ आदिवासी लेखन की राह थोड़ी आसान हुई, वहीं इसके बारे में कुछ सरलीकरणों और भ्रमों का निर्माण भी हुआ। आदिवासी लेखन और साहित्य के बारे में सही समझ बनाने के लिए इसकी स्रोत सामग्री और उसके आधार पर बनने वाली आदिवासी साहित्य की परंपरा की पड़ताल करनी बहुत जरूरी है। साथ ही आदिवासी साहित्य की विचारधारा पर भी बात करनी आवश्यक है। जब हम आदिवासी साहित्य की परंपरा और विचारधारा का व्यवस्थित अध्ययन करेंगे तो उसकी प्रवृत्तियों को भी समझ पायेंगे। जाहिर है मुक्तिकामी विमर्शों के दौर में इन विमर्शों और अस्मिताओं से संबंधित साहित्य की सही परंपरा और प्रवृत्तियों के अध्ययन के माध्यम से ही हम मूल्यांकन की सही प्रविधि निर्मित कर पायेंगे।

आदिवासी साहित्य की अवधारणा

आदिवासी साहित्य के अध्येता प्रो. वीर भारत तलवार ने तद्भव-34 में छपे अपने लेख में आदिवासी संबंधी साहित्य की चार श्रेणियाँ बनाई है-

- 1. कुछ ऐसे लेखक हैं जो आदिवासी समाज के बारे में बहुत कम और सतही जानकारी रखते हैं और साथ ही अपने सवर्ण हिंदू संस्कारों से ग्रस्त हैं, अपने सामाजिक-सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों से ग्रस्त हैं और उसी दृष्टि से आदिवासी समाज को चित्रित करते हैं।
- 2. दूसरी श्रेणी उन लेखकों की है जो लंबे समय से आदिवासियों के करीब रहते आए हैं और उनसे पूरी सहानुभूति रखते हैं, उनके समाज से थोड़ा-बहुत वाकिफ भी है इनकी मुख्य प्रवृत्ति आदिवासियों के दमन शोषण और उत्पीड़न को चित्रित करने और उनकी आर्थिक राजनीतिक समस्याओं को उठाने की है।

- 3. उन लेखकों का साहित्य जो आदिवासियों के बीच लंबे समय तक रहे हैं, जिन्होंने उनका अच्छा और बुरा देखा है और उनकी प्रवृत्तियों को समझने का प्रयास किया है।
- 4. चौथी श्रेणी खुद आदिवासियों द्वारा लिखे साहित्य की है यह उन्होंने अपनी मूल भाषाओं में लिखा हो या हिंदी, बांग्ला या अन्य प्रादेशिक भाषाओं में, इससे फर्क नहीं पड़ता।

इन चार श्रेणियों में से वीर भारत तलवार चौथी श्रेणी को ही प्रामाणिक आदिवासी साहित्य मानते हैं और शेष तीन श्रेणियों को आदिवासी संबंधी साहित्य। चौथी श्रेणी, यानी स्वयं आदिवासियों द्वारा लिखित साहित्य के बारे में वे लिखते हैं, "इसकी गुणवत्ता बिल्कुल अलग किस्म की है। आदिवासियों के जीवन और समाज के सच्चे चित्र यहीं मिलते हैं।"

आदिवासी साहित्य के नाम पर मुख्यतः तीन तरह का साहित्य हमारे सामने है:

- आदिवासियों के बारे में लिखा गया साहित्य ।
- आदिवासियों के द्वारा लिखा गया साहित्य ।
- आदिवासी दर्शन को आधार बनाकर लिखा गया साहित्य ।

आदिवासियों के बारे में लिखे गए साहित्य का आदिवासी साहित्य के रूप में दावा करना सहज है इसीलिए शोधार्थी अक्सर रेणु के 'मैला आंचल' के संथाल प्रसंग या योगेन्द्रनाथ सिन्हा के 'वनलक्ष्मी' से आदिवासी साहित्य की शुरुआत मान लेते हैं।

कुछ लोग तो तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में आए वन के प्रसंगों को भी आदिवासी साहित्य में मान लेते हैं और इसी दृष्टि से विश्लेषण करने लगते हैं।

परिणाम यह होता है कि जहाँ भी वन, जंगल या किसी आदिवासी समुदाय का जिक्र आ जाता है, उसे ही आदिवासी साहित्य मान लिया जाता है और इससे 20वीं सदी के आखिरी दशक में प्रमुखता से उभरे आदिवासी साहित्य के आंदोलन के बारे में भ्रमों का निर्माण होता चला जाता है। आदिवासी चिंतक हिंदी साहित्य में आए वन या आदिवासी प्रसंगों को आदिवासी साहित्य मानने से इनकार करते हैं।

इस तरह आदिवासी साहित्य के बारे में **दूसरा विचार** सामने आता है- आदिवासियों के द्वारा लिखा गया साहित्य ही आदिवासी साहित्य है। यह विचार स्त्रीवादी साहित्य और दलित साहित्य के प्रभाव में निर्मित हुआ है। जाहिर है इस तर्क की अपनी सीमाएँ हैं। अनुभूति की प्रामाणिकता किसी साहित्य का एकमात्र आधार नहीं हो सकती।

आज जब आदिवासी समाज गहरे सांस्कृतिक हमलों से गुजर रहा है, ऐसे में आदिवासी समाज का सच लिखने के लिए केवल किसी समुदाय में पैदा हो जाना काफी नहीं है। आदिवासी समुदायों का बड़ी संख्या में हिंदूकरण और ईसाईकरण हुआ है। इसने उनकी मौलिक समझ और दर्शन को बहुत प्रभावित किया है।

इस प्रक्रिया में आदिवासी साहित्य की अवधारणा को लेकर **तीसरा विचार** सामने आता है कि आदिवासी दर्शन को आधार बनाकर लिखा गया साहित्य ही आदिवासी साहित्य माना जाए। जाहिर है आदिवासी दर्शन ही वह तत्व है जो आदिवासी समाज और साहित्य को शेष समाज और साहित्य से अलग करता है। यह आदिवासी जीवन का मूल है और जिस पर चौतरफा हमले हो रहे हैं इसलिए जहाँ आदिवासी दर्शन आदिवासी साहित्य की मूल शर्त है वहीं इसे बचाना आदिवासी साहित्य आंदोलन का मुख्य ध्येय है।

निष्कर्षतः आदिवासी साहित्य आदिवासी दर्शन पर आधारित साहित्यिक आंदोलन है जो आदिवासी परंपरा से अपने तत्व लेता है और 21वीं सदी के पहले दशक में अकादमिक जगत में अपना अलग साहित्यिक आंदोलन होने का दावा प्रस्तुत करता है। समकालीन आदिवासी लेखन की शुरुआत हमें उदारवाद, बाजारवाद और भूमंडलीकरण के उभार से माननी चाहिए। भारत सरकार की नई आर्थिक नीतियों ने आदिवासी शोषण उत्पीड़न की प्रक्रिया तेज की, इसलिए इसका प्रतिरोध भी मुखर हुआ। शोषण और उसके प्रतिरोध का स्वरूप राष्ट्रीय था इसलिए प्रतिरोध से निकली रचनात्मक ऊर्जा का स्वरूप भी राष्ट्रीय था। आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक ऊर्जा का नाम ही समकालीन आदिवासी साहित्य आंदोलन है। आदिवासी साहित्य अस्मिता की खोज, दिक्कों द्वारा किये गए और किये जा रहे रहे शोषण के विभिन्न रूपों के उद्घाटन तथा आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संकटों और उनके खिलाफ हो रहे प्रतिरोध का साहित्य है। यह उस परिवर्तनकामी चेतना का रचनात्मक हस्तक्षेप है जो देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव का पुरजोर विरोध करती है तथा उनके जल, जंगल, जमीन और जीवन को बचाने के हक में उनके आत्मनिर्णय के अधिकार के साथ खड़ी होती है।

- आदिवासियों ने किसी कौम पर राज करने के लिए नहीं, लेकिन अपना अस्तित्व बचाने के लिए बार-बार विद्रोह किया है। पिछली दो सदियों आदिवासी विद्रोहों की गवाह रही हैं। इन विद्रोहों से रचनात्मक ऊर्जा भी निकली, लेकिन वह मौखिक ही अधिक रही। समकालीन आदिवासी साहित्य की पृष्ठभूमि के रूप में आदिवासी समाज में हजारों साल पुरानी साहित्य की मौखिक परंपरा को रखा जा सकता है, जिसे पुरखौती कहा जाता है। पूर्वोत्तर भारत में लगभग डेढ़ सौ साल पहले और संताली आदि मध्य भारतीय आदिवासी भाषाओं में 1950 के आसपास से आदिवासी कलम ने अपने स्वरो को शब्दों में ढालना शुरू किया। आजादी के बाद जयपाल सिंह मुंडा के नेतृत्व में भारतीय राजनीति से साहित्य तक में आदिवासी चेतना की गूंज सुनाई देने लगी। बाद के आदिवासी लेखन को उसी के विकास के रूप में देखा जा सकता है। पुरखौती रूप में मौजूद आदिवासी साहित्य जहाँ प्रकृति और प्रेम के विविध रूपों के साथ रचाव और बचाव का साहित्य है, वहीं समकालीन आदिवासी लेखन अस्मिता की खोज, दिक्कों द्वारा किये गए और किये जा रहे शोषण के विविध रूपों के उद्घाटन तथा आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संकटों और उनके खिलाफ हो रहे संघर्ष का साहित्य है।

आदिवासी चिंतकों का नजरिया

आदिवासी साहित्य के नाम पर किये जा रहे शोधों में से काफी मात्रा में ऐसे भी हैं जिनका आदिवासी समाज और साहित्य से कोई सीधा संबंध ही नहीं बनता। वस्तुस्थिति यह है कि आदिवासी जीवन और समाज पर गैर-आदिवासी रचनाकारों के कहानी-उपन्यास प्रशंसा, पाठ्यक्रम और पुरस्कार पा रहे हैं तथा दो-एक आदिवासी रचनाकारों को छोड़कर सैकड़ों की संख्या में सक्रिय आदिवासी कवि-लेखक उपेक्षा के शिकार हैं।

वंदना टेटे ने आदिवासी साहित्य संबंधी अपने चिंतन को व्यवस्थित रूप से अपनी पुस्तक 'आदिवासी साहित्य: परंपरा और प्रयोजन' में रखा है। इसमें वंदना टेटे आदिवासी साहित्य संबंधी प्रचलित तीन धारणाओं- उसके लोक साहित्य होने, अनगढ़ होने और प्रतिरोध का साहित्य होने का खंडन करती हैं तथा आदिवासी संस्कृति, जीवन-दर्शन व उनके विश्वदृष्टिकोण के प्रति एक नई अंतरंग दृष्टि की मांग करती है। वे लोक का संबंध हिंदू मिथक और संस्कृति से बताते हुए कहती हैं, "प्रकृति-पूजक और बोंगा को मानने वाले आदिवासियों के साहित्य को हिंदू धर्म की शब्दावली 'लोक' में बांधकर संकीर्ण करना धार्मिक असहिष्णुता तो है ही. सांस्कृतिक अतिक्रमण भी है।"

इस पुस्तक में वंदना टेटे की सबसे महत्वपूर्ण स्थापना है कि आदिवासी साहित्य अन्य शोषितों के साहित्य की तरह वेदना और प्रतिरोध का साहित्य नहीं है। वे लिखती हैं, “आदिवासी साहित्य मूलतः सृजनात्मकता का साहित्य है। यह इंसान के उस दर्शन को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य है जो मानता है कि प्रकृति सृष्टि में जो कुछ भी है, जड़-चेतन, सभी कुछ सुंदर है।.. वह दुनिया को बचाने के लिए सृजन कर रहा है।” वंदना टेटे कहती हैं कि प्रतिरोध का साहित्य वर्तमान सत्ता के खिलाफ लड़ने वालों की सत्ता स्थापित करना चाहता है लेकिन आदिवासी साहित्य में ऐसी कोई कामना दूर-दूर तक नहीं है।

यह आदिवासी साहित्य का मूलाधार है। इसलिए आदिवासी साहित्य का इतिहास लिखते वक्त, उसकी प्रवृत्तियों बताते वक्त हमें संताली, मुंडारी, खड़िया, कुडुख, हो आदि भाषाओं की साहित्य परंपरा को सामने रखना होगा।

आदिवासी विमर्श की परंपरा

- आदिवासी साहित्य की परंपरा की पड़ताल करने के लिए आदिवासी साहित्य के स्रोतों का अध्ययन जरूरी है। आदिवासी साहित्य की परंपरा को तीन भागों में बाँटकर समझा जा सकता है:
- 1. पुरखा साहित्य
- 2. आदिवासी भाषाओं में लिखित साहित्य की परंपरा
- 3. समकालीन हिंदी आदिवासी लेखन।
- **1 पुरखा साहित्य**
- आदिवासी दर्शन व साहित्य का मूलाधार पुरखा साहित्य ही है। पुरखा साहित्य आदिवासी समाज में हजारों वर्षों से जारी मौखिक साहित्य की परंपरा है। 20वीं सदी में इसके संकलन, संपादन और प्रकाशन के कार्य भी हुए हैं। आदिवासी चिंतक इस मौखिक परंपरा को मौखिक साहित्य या लोक-साहित्य कहने के बजाय पुरखा साहित्य कहते हैं।

इसके पीछे महत्वपूर्ण तर्क है। पहली बात तो यह कि मौखिक साहित्य कहने से कुछ पता नहीं चलता कि किसका मौखिक साहित्य कैसा मौखिक साहित्य? दुनिया के तमाम समाजों में लिखित से पहले मौखिक साहित्य की परंपरा रही है उससे अलगाने के लिए आदिवासी चिंतक आदिवासी मौखिक परंपरा को पुरखा साहित्य कहते हैं। इस प्रक्रिया में वे इसे लोक साहित्य से भी अलग बताते हैं। इस संदर्भ में आदिवासी चिंतक वंदना टेटे लिखती हैं कि चूंकि आदिवासी में समाज में बाहरी समाज की तरह लोक और शास्त्र का भेद नहीं है, इसलिए साहित्य को भी नहीं बाँटा जा सकता। चूंकि आदिवासी समाज और संस्कृति में पुरखों का बहुत महत्व है और मौखिक परंपरा में मिलने वाले गीत कथाएँ आदि भी पुरखों ने ही रची है। इसलिए इस मौखिक परंपरा को सम्मिलित रूप में पुरखा साहित्य कहना चाहिए।

तमाम आदिवासी भाषाओं में पुरखा साहित्य की समृद्ध परंपरा मौजूद है। इसी के माध्यम से हम उनके जीवन-दर्शन, ज्ञान परंपरा, मूल्यों-विश्वासों आदि को जान सकते हैं इसलिए आदिवासी जीवन को जानने के लिए पुरखा साहित्य को संकलित करना और सहेजना बहुत जरूरी है। इस दिशा में अध्येताओं ने थोड़ा बहुत कार्य किया है लेकिन काफी काम किया जाना बाकी है। देश में 300 से अधिक आदिवासी भाषाओं में पुरखा साहित्य की परंपरा बिखरी पड़ी है। इसके संकलन और संपादन में बहुत सावधानी की जरूरत है। अक्सर हम अपने पूर्वाग्रहों के साथ संकलन शुरू करते हैं और हमारे पूर्वाग्रह पाठ संशोधन के बीच में घुस जाते हैं। संकलन के लिए आदिवासी दर्शन और संबंधित भाषा का ज्ञान जरूरी है।

उपलब्ध पुरखा साहित्य में दो-तीन विशेषताएँ कॉमन हैं- पुरखों के प्रति कृतज्ञता का भाव, प्रकृति और प्रेम के प्रति गहरी संवेदनशीलता, बाहरी समाज के हमलों के प्रति सजगता, अपनी परंपरा और संस्कृति को बचाने का भाव आदि। आदिवासियों पर बाहरी समाजों के हमलों का इतिहास काफी पुराना है और उतनी ही पुरानी है उसके प्रति आदिवासी पुरखों की सजगता ।

2. आदिवासी भाषाओं में रचित साहित्य की परंपरा

आदिवासी भाषाओं में लिपियाँ विकसित होने की शुरुआत अब से लगभग डेढ़ सौ साल पहले हो गई। अब तक एक दर्जन से अधिक आदिवासी भाषाओं की लिपियाँ तैयार हो चुकी हैं। कई आदिवासी भाषाओं ने पड़ोस की किसी बड़ी भाषा की लिपि को स्वीकार कर लिया है। निष्कर्षतः आदिवासी भाषाओं में लेखन और मुद्रण की परंपरा भी सौ साल से अधिक पुरानी है। इस परंपरा की और पड़ताल किये जाने की जरूरत है। मौजूदा स्रोत सामग्री के अनुसार मेन्नस ओड़ेय का 'मतुराअ कहनि' नामक मुंडारी उपन्यास पहला आदिवासी उपन्यास है। यह 20वीं सदी के दूसरे दशक में लिखा गया। इसके एक भाग का अनुवाद हिंदी में 'चलो चाय बागान' शीर्षक से किया गया।

आदिवासी भाषाओं में रचित साहित्य का महत्त्व यह है कि इसमें विधाएँ भले ही बाहरी समाजों और भाषाओं से ली गई हैं लेकिन चूंकि रचनाकार अपनी मातृभाषा में लिख रहा है इसलिए अभिव्यक्त विचार और दर्शन में मौलिकता बनी रहती है।

पूर्वोत्तर की खासी, गारो आदि भाषाओं में शौर्यगाथाओं की लंबी परंपरा है। धीरे-धीरे हिंदी आदि अन्य भाषाओं में भी इनके अनुवाद होने लगे हैं। ढेरों आदिवासी भाषाओं के लेखन में गए बिना सिर्फ गैर-आदिवासी भाषाओं में प्राप्त सामग्री के आधार पर आदिवासी साहित्य के बारे में बनाई गई राय अधूरी और भ्रामक होगी। अब भी हर साल आदिवासी भाषाओं में सैकड़ों किताबें प्रकाशित हो रही हैं। हालांकि स्पष्ट समझदारी के अभाव में कहीं उसे आदिवासी लोक साहित्य कहा जा रहा है तो कहीं लोक कथाएँ।

- 3 समकालीन हिंदी आदिवासी लेखन

पुरखा साहित्य और आदिवासी भाषाओं में लिखित साहित्य से प्रेरणा ग्रहण कर बाहरी साहित्य के प्रभाव में हिंदी, बांग्ला, तमिल, मलयालम, उड़िया आदि बड़ी भाषाओं में भी लेखन शुरू किया। हर भाषा में इसकी शुरुआत के समय में थोड़ा-बहुत फर्क है। हिंदी में इसकी शुरुआत तीन दशक पहले से मानी जा सकती है।

हिंदी के लेखकों के प्रभाव में आदिवासियों ने मुंडारी, संताली, खड़िया आदि भाषाएँ छोड़कर हिंदी में लिखना शुरू किया।

हालांकि इनकी ज्यादातर रचनाएँ छोटे प्रकाशनों से छपी हैं या अप्रकाशित ही रही हैं लेकिन इसके बावजूद पिछले तीन दशकों में हिंदी में सक्रिय आदिवासी रचनाकारों की संख्या कई दर्जन है। इन्होंने कविताओं के अलावा कहानियाँ और उपन्यास तो लिखे ही हैं, कुछ ने तो व्यंग्य, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत आदि विधाओं में भी हाथ आजमाया है।

हिंदी आदिवासी कविता में पहला नाम सुशीला सामद का है लेकिन उसके बाद एक निरंतरता का अभाव दिखाई देता है। इसलिए समकालीन हिंदी आदिवासी कविता की शुरुआत हम रामदयाल मुंडा की कविताओं से मान सकते हैं जिन्होंने मुंडारी के साथ हिंदी में भी कविताएँ लिखी है।

उनके बाद ग्रेस कुजूर, रोज केरकेट्टा, हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो, निर्मला पुतुल, वंदना टेटे, विजय सिंह मीणा, ज्योति लकड़ा, अनुज लुगुन, जसिता केरकेट्टा आदि का नाम उल्लेखनीय है।

कथा लेखन के क्षेत्र में वाल्टर भेंगरा 'तरुण' पीटर पौल एक्का, रोज केरकेट्टा, मुंगल सिंह मुंडा, विजय सिंह मीणा आदि प्रमुख हैं। इन्होंने आदिवासी साहित्य को सैंकड़ों कहानियों और लगभग आधा दर्जन उपन्यास दिये हैं।

शंकरलाल मीणा व्यंग्य और कहानी- दोनों क्षेत्रों में सक्रिय हैं। हरिराम मीणा ने यात्रा-वृत्तांत व संस्मरण भी लिखे हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आदिवासी साहित्य न केवल हिंदी आदि गैर-आदिवासी भाषाओं की एक उभरती प्रवृत्ति और साहित्यांदोलन है, बल्कि आदिवासी भाषाओं में इसकी गहरी जड़ें और लंबी परंपरा मौजूद है। इसके बारे में राय बनाने के लिए पूरी परंपरा का अध्ययन आवश्यक है।

आदिवासी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

आदिवासी साहित्य की प्रधान प्रवृत्ति आदिवासी दर्शन की अभिव्यक्ति और विस्तार है। आदिवासी दर्शन और साहित्य की कुछ बुनियादी विशेषताएँ हैं जिन्हें इस प्रकार समझा जा सकता है:

1. आदिवासी दर्शन का पहला तत्व है उसका प्रकृति की लय-ताल और संगीत का अनुगामी होना। दरअसल आदिवासी समाज में साहित्य अन्य कला-माध्यमों से अलग और श्रेष्ठ नहीं माना जाता। वहाँ कलाकार एक साथ गीतकार भी है, संगीतकार भी है और नर्तक भी। आदिवासी साहित्य की लंबी परंपरा के रूप में मौजूद मौखिक साहित्य या पुरखौती में कौन सा गीत किसने रचा, ये बताना मुश्किल है क्योंकि अधिकांश गीतों की रचना सामूहिक रूप से हुई। पुरखौती किसी व्यक्ति या व्यक्तियों की नहीं पूरे समाज की धरोहर मानी जाती है तमाम भाषाओं में मौजूद आदिवासी साहित्य में प्रकृति की लय-तान और संगीत भरा पड़ा है। समकालीन आदिवासी लेखन पर भी इसका असर देखा जा सकता है। बिना संगीत के आदिवासी कविताओं की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती।

- 2. आदिवासी दर्शन में प्रकृति और पुरखों के प्रति आभार का भाव निहित होता है। पुरखों के कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान और इंसानी बेहतरी के अनुभवों के प्रति आदिवासी रचनाकार कृतज्ञता व्यक्त करता है क्योंकि उसी से पृथक आदिवासी परंपरा और संस्कृति के निर्माण द्वारा आदिवासी अस्मिता का स्वरूप बना। आदिवासी दर्शन परलोक के बजाय समूचे जीव जगत को महत्त्वपूर्ण मानता है और मनुष्य की श्रेष्ठता के दंभी दावे को खारिज करता है। आदिवासी विश्वदृष्टि के अनुसार दुनिया का हर प्राणी और उसका जीवन बराबर महत्त्वपूर्ण है। इसलिए उन सब को बचाया जाना जरूरी है। साथ ही नदी, नाले, पहाड़, जंगल आदि को भी बचाया जाना जरूरी है।
- 3. आदिवासी दर्शन पूरी दुनिया में फैल रही बाजारवादी लालसा और उससे उपजी धनलोलुपता और हिंसा का नकार करता है। बाहरी समाज ने हमेशा आदिवासी इलाकों को प्राकृतिक संसाधन के दोहन का केन्द्र माना है। आदिवासी जिस प्रकृति की माँ मानते आए हैं, उसे बाहरी लोगों ने मुनाफे का साधन मात्र माना है। देश के तमाम आदिवासी इलाके संसाधनों के दोहन के लिए बर्बाद कर दिए गए और अब भी किये जा रहे हैं। आदिवासी उन जंगलों, नदियों, पहाड़ों से जरूरतभर चीजें लेता आया है और बदले में उनकी रक्षा करता आया है।

4. आदिवासी दर्शन की एक और खास बात है- जीवन के प्रति आनंदमयी अदम्य जिजीविषा । आज जब चारों ओर निराशा और कुंठा का माहौल है, आदिवासी दर्शन जीवन को आनंदमय नजरिए से देखने और जीने की वकालत करता है। आदिवासी जीवन में सांस्कृतिक वैविध्य के साथ सहजता और सरलता का अनूठा मेल देखने को मिलता है, जो जीवन को आनंदमयी बनाए रखता है वहाँ न पैसे का लालच है और न मुनाफे की अंधी दौड़ बल्कि वह अपने सुखमय जीवन के लिए सृष्टि और समष्टि के प्रति कृतज्ञ महसूस करता है।

5. गैर-आदिवासी लेखन रंग, नस्ल, लिंग, धर्म आदि के पूर्वाग्रहों से भरा पड़ा है जबकि आदिवासी साहित्य और दर्शन में इनके प्रति कोई आग्रह नहीं है आदिवासी सौंदर्यबोध के अनुसार दुनिया में कुछ भी असुंदर नहीं है। साथ ही आदिवासी साहित्य हर तरह की गैरबराबरी के खिलाफ है ।

6. जब पूरी दुनिया एक सांस्कृतिक और एक भाषा की ओर बढ़ती चली जा रही है, आदिवासी दर्शन मानव समाज की भाषाई और सांस्कृतिक विविधता के साथ खड़ा है। आदिवासियों का पारंपरिक ज्ञान और साहित्य उनकी अपनी भाषाओं में संरक्षित है।

7. संयुक्त राष्ट्र संघ दुनियाभर के देशज लोगों के हक में उनके आत्मनिर्णय के अधिकार का समर्थन करता है। आदिवासी साहित्य भी आदिवासियों के आत्मनिर्णय के अधिकार के पक्ष में है।

8. आदिवासी दर्शन सहअस्तित्व, समता, सामूहिकता, सहजीविता, सहभागिता और सामंजस्य को अपना आधार मानते हुए रचाव और बचाव में यकीन करता है, इसीलिए इसमें स्वानुभूति या सहानुभूति के स्थान पर सामूहिक अनुभूति का प्रबल स्वर- संगीत सुना जा सकता है।

8. आदिवासी दर्शन सहअस्तित्व, समता, सामूहिकता, सहजीविता, सहभागिता और सामंजस्य को अपना आधार मानते हुए रचाव और बचाव में यकीन करता है, इसीलिए इसमें स्वानुभूति या सहानुभूति के स्थान पर सामूहिक अनुभूति का प्रबल स्वर- संगीत सुना जा सकता है।

9. आदिवासियों का साहित्य उनकी मातृभाषाओं की मौखिक (और अब लिखित भी) परंपरा में मौजूद है। इसलिए आदिवासी दर्शन या आदिवासी विश्वदृष्टिकोण को समझने के लिए आदिवासियों के केवल हिंदी लेखन से काम नहीं चलेगा। उनकी मातृभाषाओं तक पहुँचना होगा।

आदिवासी साहित्य में स्त्री रचनाकारों और उनके मुद्दों की उपस्थिति शेष हिंदी साहित्य से काफी अच्छी हैं। श्रम में बराबर की भागीदारी की वजह से स्त्री आदिवासी समाज में तुलनात्मक रूप में मजबूत स्थिति में रही है साहित्य लेखन में भी उसने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया है।

पहली हिंदी कविता सुशीला सामद की मिलती है तो कहानी एलिस एक्का की। आलोचना के क्षेत्र में वंदना टेटे अग्रणी हैं ही। निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी स्त्री की समस्याएँ बहुत बारीकी से अभिव्यक्त हुई हैं और रोज केरकेट्टा की कहानियों में आदिवासी स्त्री के शोषण और प्रतिरोध का चित्रण हुआ है।

आदिवासी साहित्य की एक विशेषता इसकी द्विभाषी प्रस्तुति है। चूंकि हिंदी आदिवासी लेखकों की मातृभाषा नहीं है और जाहिर है कोई भी लेखक मूलतः अपनी मातृभाषा में सोचता है तथा अपनी भाषा में ही बेहतर लिख सकता है। इसलिए ज्यादातर आदिवासी लेखकों ने अपनी रचनाएँ प्रधानतः अपनी भाषाओं में लिखी हैं और उनका हिंदी रूपांतरण भी साथ ही प्रस्तुत किया है। यह कार्य कविता के क्षेत्र में सर्वाधिक हुआ है। इसकी वजह कविता का छोटा कलेवर है। दर्जनों आदिवासी रचनाकारों ने अपने कविता-संग्रह द्विभाषिक प्रस्तुत किये हैं, जिसमें एक उनकी मातृभाषा है और दूसरी हिंदी। जसिन्ता केरकेट्टा ने तो अंग्रेजी और जर्मन में भी अपनी कविताएं प्रस्तुत की हैं। कुछ रचनाकारों ने कहानियाँ भी दो भाषाओं में साथ में प्रस्तुत की हैं। जाहिर है उपन्यास के क्षेत्र में यह व्यावहारिक नहीं है इसलिए उपन्यासों की द्विभाषिक प्रस्तुति नहीं दिखाई पड़ती।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समकालीन आदिवासी लेखन अपनी पुरखा परंपरा और बाहरी समाज और साहित्य से संवाद कर सृजन के क्षेत्र में नए प्रयोग करता हुआ आदिवासी जीवन और दर्शन की अभिव्यक्ति कर अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज करा रहा है।

आदिवासी साहित्य की भाषा और शिल्प

हिंदी आदिवासियों की मातृभाषा नहीं है। वह आदिवासियों के लिए वैसे ही पराई भाषा है जैसे तमाम भारतीयों के लिए अंग्रेजी। आदिवासियों ने हिंदी सायास सीखी है इसलिए आदिवासी लेखन में भाषा का वैसा छद्म नहीं है जैसा कि अक्सर हिंदी लेखन में देखने को मिलता है। आदिवासी लेखन में दलित साहित्य जैसा आक्रोश भी नहीं है और न ही किसी प्रकार का गाली-गलौज । इसके बावजूद विशिष्ट है आदिवासी लेखन की भाषा। आदिवासी साहित्य की भाषा को हम निम्न बिंदुओं के माध्यम से समझ सकते हैं :

1. आदिवासी लेखन की भाषा सहज है। इससे जहाँ वह एक तरफ आदिवासी दर्शन के अनुकूल बन पड़ी है, वहीं दूसरी तरफ पाठक के लिए भी आसान है। हालांकि हिंदी साहित्य की नकल करते हुए लिखने वाले आदिवासी साहित्यकारों की भाषा में तत्सम प्रधानता और एक तरह की कृत्रिमता है। मंगल सिंह मुंडा का उपन्यास 'छैला सन्दु' इस संदर्भ में देखा जा सकता है।

2. चूंकि हिंदी आदिवासियों की मातृभाषा नहीं है इसलिए उनकी हिंदी में स्थानीय प्रभाव खूब देखने को मिलते हैं। जैसे झारखंड के साहित्यकार अपने गद्य और पद्य में लिंग संबंधी गलतियां करते हैं। इसी तरह स्थानीयता के प्रभाव में वे क्रिया का स्थानीय बोलचाल वाला रूप प्रयुक्त करते हैं।

3. आदिवासी साहित्य की भाषा का वैशिष्ट्य उसमें आई आदिवासी जीवन संबंधी शब्दावली है। जाहिर है वे आदिवासी भाषा-संस्कृति से आई है इसलिए उसका हिंदी में अनुवाद प्रस्तुत करना या समानांतर शब्द खोजना लगभग असंभव है। उदाहरण के लिए 'अखड़ा' को लीजिए। हिंदी का पाठक जब कही 'अखड़ा' लिखा पढ़ता है तो वह अपने सीमित ज्ञान संसार की वजह से यह समझ लेता है कि यह शब्द शायद अखाड़ा है, गलती से 'अखड़ा' छप गया है। जबकि 'अखड़ा' शब्द का अखाड़ा से कोई संबंध नहीं। 'अखड़ा' आदिवासी संस्कृति का केन्द्र है। वह आदिवासी गाँव की तमाम गतिविधियों का केन्द्र है लेकिन वह चौपाल नहीं है। इस तरह की शब्दावली आदिवासी कविता में भरी पड़ी है जिसके प्रसंग आदिवासी समाज, संस्कृति, इतिहास या मूल्यों में बिखरे पड़े हैं। आदिवासी समाज से एकदम अपरिचित व्यक्ति के लिए इन शब्दों को समझ पाना बहुत बड़ी चुनौती है।

4. रचनाओं की द्विभाषी प्रस्तुति आदिवासी साहित्य के शिल्प की एक प्रमुख विशेषता है। ज्यादातर कविता-संग्रह कवियों की अपनी मातृभाषा और हिंदी में प्रस्तुत किये गए हैं।

उपसंहार

आदिवासी साहित्य विविधताओं से भरा हुआ है। समृद्ध मौखिक साहित्य परंपरा का लाभ आदिवासी साहित्यकारों को मिला है। आदिवासी साहित्य की उस तरह कोई केन्द्रीय विधा नहीं है, जिस तरह स्त्री साहित्य और दलित साहित्य की आत्मकथात्मक लेखन है। आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संघर्ष में कविता को अपना मुख्य हथियार बनाया है।

आदिवासी साहित्य में आत्मकथात्मक लेखन केन्द्रीय स्थान नहीं बना सका क्योंकि स्वयं आदिवासी समाज 'आत्म' में नहीं, समूह में विश्वास करता है। अधिकांश आदिवासी समुदायों में काफी समय बाद तक भी निजी और निजता की धारणाएँ घर नहीं कर पाईं। परंपरा, संस्कृति, इतिहास, कला से लेकर विद्रोह तक, सब कुछ सामूहिक है और समूह की बात आत्मकथा में नहीं, जनकविता में ज्यादा अच्छे से व्यक्त हो सकती हैं।

आदिवासी साहित्य बिरसा, सिदो-कान्हू, सिनगी दर्ई, फूलो झानो, माकी मुंडा, गोंड रानी दुर्गावती और तमाम आदिवासी पुरखों के जीवन और आंदोलनों से चेतना और प्रेरणा लेकर आगे बढ़ रहा है।